सामाजिक परिवर्तन और ज्ञान की क्रांति

चंद्रभूषण प्रसाद सिंह

प्रजातंत्र! स्वाधीनता! शांति! प्रगति! न्याय! समाजवाद! उदार पूंजीवाद!...

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा मैं जब देखता हूं गुजरती बीसवीं सदी, तो हिलोरें मारता है आशा का एक समंदर! शिक्षा सबके लिए! हवा, रौशनी, बारिश-जैसी प्रकृति-प्रदत्त सुषमा की तरह, शिक्षा पर भी सबका अधिकार है। मेरे पूर्वज शंबूक! मेरे पूर्वज एकलव्य! आपको अधिकार से, ज्ञान से, जीवन से अब कोई नहीं कर सकता वंचित! नहीं बने रह सकते आप अब अभिवंचित, क्योंकि यथार्थ है! दहकता यथार्थ—ले मशालें चल पड़े हैं लोग मेरे गांव के, अब अंधेरा जीत लेंगे मेरे गांव के...। और भरभरा रहा है उत्पीड़न, असमानता पर छल-बल से खड़ा किया गया अमानुषिक बनाने वाले यथार्थ का महल! साक्षरता मात्र लिखना और पढ़ना नहीं, बल्कि अमानुषिक यथार्थ को बदलने का औजार है। शिक्षा परिस्थितियों के विश्लेषण एवं उनमें सकारात्मक बदलाव लाने का माध्यम है। शिक्षा शोषितों, उत्पीड़ितों एवं हाशिए पर खड़े लोगों के लिए सूरज की ऊष्मा है। क्षमता को बढ़ाने एवं समाज के निर्माण का उत्स है। शिक्षा का मतलब है—विवेकीकरण। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अंतर्विरोध को समझना और यथार्थ के उत्पीड़क तत्वों के विरुद्ध कर्म करना।

दुनिया भर के देशों ने साक्षरता के प्रसार को एक सांस्कृतिक घटना का दर्जा दिया है। भारत में भी साक्षरता को एक अभियान

के रूप में चलाया जा रहा है। आजादी के बाद यह घटना किश्तों में कई बार घट चुकी है। इस घटना के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव निकट भविष्य में प्रगट होंगे, इतना निश्चित है। किंतु, इन प्रभावों का चरित्र ठीक-ठीक क्या होगा, इस सवाल का माकूल जवाब आसानी से नहीं दिया जा सकता।

आज की परिस्थिति में साक्षरता एवं निरक्षरता के मिले-जुले कई रूप एवं संस्करण देखे जा सकते हैं। हालांकि, विश्व के मौजूदा अर्थतंत्र में अलग-अलग हैसियत की जगहों पर स्थापित विभिन्न साक्षर समाजों को देखकर साक्षरता एवं सामाजिक बदलाव के किसी सरल समीकरण की पहचान नहीं की जा सकती। किसी ठोस नतीजे पर तुरंत नहीं पहुंचा जा सकता। कारण है—दोहरे परिणाम। साक्षरता कहीं उत्पीड़ित मनुष्य की मुक्ति का साधन बनी है तो कहीं परिवर्तन के लिए संघर्ष की प्रेरणा को कमजोर करने और भुलावा देने का औजार भी। ऐसा लगता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में साक्षरता के परिणाम एक ओर स्थापित विचारधारा और माहौल से प्रभावित होते हैं, दूसरी ओर साक्षरता कार्यक्रमों के लिए किए गए शैक्षिक विधि संबंधी निर्णयों से। एक साक्षर समाज बनाने का ऐतिहासिक आशय तभी समझा जा सकता है, जब हम दोनों पहलुओं पर विचार करें। हमारे सामने दुनिया के कई देशों के साक्षरता—अभियान की सफलताओं एवं असफलताओं के दस्तावेज मौजूद हैं, अलग-अलग रणनीतियां और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियां उपलब्ध हैं, जिनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। आखिर थाईलैंड एवं वियतनाम—दोनों ही साक्षरता के व्यापक अभियानों से गुजरे हैं, परंतु दोनों राष्ट्रों में साक्षरता ने अलग-अलग सांस्कृतिक भूमिकाएं निभाई हैं।

उभरते रुझान

1950 के बाद जो शिक्षा के प्रयास हुए हैं, वे यूनेस्को द्वारा ही हुए हैं। एकमात्र देश जिसने अपने आप ऐसा एक संघर्ष चलाने की कोशिश की है, वह है मेक्सिको। वहां भी विफलता की दर तौसले पस्त कर देने वाली थी। पचासी प्रतिशत लोग निरक्षर रह ही गए। 1965 में यूनेस्को की मदद से पहली बार तीसरी दुनिया के तेरह देशों में बारह पाइलट प्रोजेक्ट्स और आठ माइक्रो प्रोजेक्ट्स शुरू किए गए। अल्जीरिया, तंजानिया, इथोपिया, मेडागास्कर, नाइजीरिया, इक्वेडोर, सीरिया, भारत, माली आदि के परिणाम निराशाजनक ही कहे जा सकते हैं।

आखिरकार 1976 में एक आधिकारिक प्रकाशन (प्रायोगिक विश्व साक्षरता कार्यक्रम: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन) में यूनेस्को ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि इस प्रयोग में तीन करोड़ तीस लाख डालर पानी में बह गए। गलती कहां रह गई थी? क्यूबा ने शुरुआती दौर में ही गलतियों को पकड़ लिया था। 1961 का साक्षरता महाभियान क्यूबाई इतिहास की एक बड़ी घटना है। क्यूबा ने असफलताओं से प्रेरणा ली—"मैंने देखा है किसी को सिसकते, किसी को डबडबाई आंखें छिपाते। महसूस किया है मैंने उनका दर्द, जो हो न पाए सफल। मैंने देखा है ऐसे लोगों को जो गिरे, पुनः उठे और चल पड़े। महसूस किया है उनके दर्द को, पर मैं बता न पाऊंगा, क्योंकि मैं मूक प्रेरणा हूं, मैं आपको कुछ बता न पाऊंगा।" नगरस्क अशिक्षितों की शिक्षा बगैर सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण के सोची भी नहीं जा सकती है। यह भोजन, जमीन एवं स्वास्थ्य संरक्षण और ऐसी अन्य चीजों के साथ-साथ ही आ सकती है। इस मुहिम को चलाने में लोगों को साथ लेना होगा न कि उनके ऊपर कार्यक्रम थोपना। जिस राष्ट्र ने लोगों की मांग उभार कर उन लोगों की मदद से अभियान चलाया, वहां इसकी आवश्यकता है, वहां दीर्घकालीन अच्छे परिणाम देखने को मिले हैं।

किसी राष्ट्र की प्रतिबद्धता ऐसे कार्यक्रम के लिए, जहां जोखिम बहुत ज्यादा हो, बहुत मायने रखता है। उस राष्ट्र को यह हिम्मत जुटानी होगी कि असफलता को स्वीकार किया जाए तथा सामाजिक यथार्थ को नजदीक से पहचाना जाए। अंतर्राष्ट्रीय समर्थन, विशेषज्ञ तथा धन रहते हुए भी साक्षरता अभियान उन तेरह राष्ट्रों में उस मुकाम तक नहीं पहुंच सका, जिसकी अपेक्षा की जा रही थी। इसका मुख्य कारण था—इस मुहिम में शामिल सरकारी तंत्र, गैर-सरकारी संस्थाओं एवं अर्द्धसरकारी संस्थाओं में प्रतिबद्धता का अभाव एवं वैसे लोगों को साथ लेकर नहीं चलना, जिन्हें साक्षर बनाना था। जिस कार्यक्रम में दृष्टि का अभाव हो, संपूर्णता की कमी हो तथा रणनीतियों का पैनापन भोथरा हो गया हो तो मानकर चलिए कि वह कार्यक्रम आंकड़ों की बैशाखी पर चल रहा है।

फिदेल कास्त्रो ने 1961 के साक्षरता अभियान पर कहा

था—"हमने अपनी औकात से बड़ी क्रांति कर डाली है।" आर्थिक नाकेबंदी को बर्दाश्त किया जा सकता है, परंतु बौद्धिक नाकेबंदी करने का अर्थ है—अभियान के नतीजों को खामोश कर देना। यह तो भ्रूण हत्या के समान था। क्यूबा का साक्षरता अभियान भले ही यूनेस्को की दृष्टि में कोई मायने नहीं रखता हो, परंतु इतिहास के पन्नों में आज भी 'मूक प्रेरणा' बनकर भारत जैसे राष्ट्र को उद्वेलित करने में सक्षम है। क्यूबाई साक्षरता-आंदोलन से प्रभावित डॉ. लारेंजेटो लिखती है—"जब एक वयस्क अशिक्षित पढ़ना-लिखना सीखने की राह पर बढ़ता है तब स्वयं समाज स्कूल जाना शुरू करता है...विद्यालय अपने दरवाजे अनुभवों, काम संबंधी समस्याओं और भुखमरी की बस्ती के लिए खोल देता है।" समाज स्कूल जाता है और पढ़ना-लिखना सीखता है, यह प्रक्रिया अभी तक अज्ञात शक्तियों को सामने लाती है। हो सकता है इनमें से कुछ शक्तियां खतरनाक भी साबित हों।

ज्ञानोदय की क्रांति का प्रारंभ राजनीतिक इच्छाशक्ति से होता है। फिदेल कास्त्रो ने 26 सितंबर, 1960 में संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में अपना महत्वपूर्ण वक्तव्य देते हुए असाधारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का परिचय दिया था—"आने वाले वर्ष में हमारी जनता का हरदा निरक्षरता के खिलाफ एक महान युद्ध लड़ने का है, जिसका वांछित लक्ष्य है, हरेक देशवासी को एक साल में पढ़ना और लिखना सिखा देना और इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों, छात्रों और मजदूरों के संगठन, यानी समूची जनता (आज) स्वयं को एक गहन अभियान के लिए तैयार कर रही है। ...क्यूबा अमरीकी महाद्वीप का वह पहला देश होगा, जो कुछ माह बाद कह सकेगा कि इसके पास एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जो निरक्षर हो।" असंभव-सा दिखने वाला यह अभियान जब सफल हुआ तो इस ऐतिहासिक घटना ने बहुतों का मुंह बंद कर दिया। क्यूबा की जनभागीदारी और सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को बेगाना निरक्षरता उन्मूलन के समूचे काम की बुनियादी प्रस्तावना बनी हुई है। यह संभव था कि अशिक्षित लोग तीन साल और इंतजार कर लेते, परंतु क्रांति किसी का तीन साल इंतजार नहीं करती।

सामाजिक यथार्थ

हमारे देश का मौजूदा परिदृश्य बताता है कि सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बहुसंख्यक लोग हाशिए पर चले गए हैं। खासकर अगर हम गांव-गंवई के लोगों का गहराई से विश्लेषण करें तो वे व्यक्ति-समूह साफ-साफ चीन्हे जा सकते हैं, जिन्हें हाशिए पर धकेल दिया गया है। पाओलो फ्रेरे ने 'उत्पीड़ित लोग' एवं 'हाशिए पर लोगों' के बीच अंतर किया है। वे हाशिए पर के लोगों को समाज के 'बाहर' का मानते हैं, जबकि उत्पीड़ित लोगों को सामाजिक संरचना के 'भीतर' के लोग मानते हैं। भारत के संदर्भ में हाशिए पर पड़े लोग समाज के बाहर नहीं हैं। वे समाज के अंदर के ही लोग हैं। साथ ही, वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के कारण उत्पीड़ित भी हैं। उनकी स्वतंत्रता या स्वाधीनता या अपने बूते पर आगे बढ़ने की ताकत व्यवस्थागत कारकों के बोझ तले इस प्रकार दबी हुई है कि वे चाहकर भी स्वयं को उत्पीड़न से मुक्त नहीं कर पाते। इनके लिए साक्षर होने का अर्थ मात्र पढ़ना-लिखना नहीं, अपितु व्यवस्था के खिलाफ लड़ते हुए समाज में अपना वजूद भी कायम करना है।

अगर हम ज्यादा उलझे बिना उत्तर भारत के कुछ राज्यों, विशेषकर बिहार की सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण करें तो, एक बात साफ झलकती है कि अभी भी बिहार अर्द्धसामंती-अर्द्धपूंजीवादी विकास की अवस्था से गुजर रहा है। जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के बावजूद, अभी भी गांव के आदमी और आदमी के बीच का संबंध आदमी एवं जमीन के संबंधों से ही तय होते हैं। जितना बड़ा भूधारी, उतना बड़ा आदमी। परिणामतः इस प्रकार की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में प्रभुत्वशाली समूहों का अल्पतंत्र हाशिए पर खड़ी बहुसंख्यक जनता पर शासन करता है। यह शासन केवल राजनीतिक अर्थ में ही नहीं होगा, अपितु वर्चस्व के अर्थ में भी होता है। वर्चस्व पर आधारित ऐसी सामाजिक व्यवस्था मनुष्यों को वस्तुओं में बदलकर उन्हें 'डीह्यूमनाइज' या उनका अमानुषीकरण करती है, जबकि समता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था मनुष्य को पूर्णतर मनुष्य बनाने का काम करती है। अमानुषीकरण की इसी परिघटना के कारण बहुसंख्यक लोग हाशिए पर धकेल दिए गए हैं।

भारत और खासकर बिहार के संदर्भ में हाशिए पर धकेले गए लोगों को मुख्यधारा में लाने एवं उनकी जिंदगी को बेहतर बनाने

का संवैधानिक स्वरूप, सामाजिक बदलाव से ही संभव हो सकता है। हालांकि अकेले किसी सूबे में सामाजिक बदलाव हो जाए तथा देश की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पूर्ववत् रहे, यह संभव नहीं होता। परंतु, कई संदर्भों में बिहार में सामाजिक बदलाव की सकारात्मक पहल पूरे देश के स्तर पर सामाजिक बदलाव की प्रेरक शक्ति बन सकती है। ऐसे सामाजिक बदलाव के लिए की जाने वाली पहल में सही शिक्षा की सार्थक एवं अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह बात लैटिन अमेरिकी देशों के संदर्भ में कही गई हो, परंतु वह हमारे संदर्भ में भी बिलकुल सटीक बैठती है।

शिक्षा महज ज्ञान का लेन-देन नहीं है। इसके विपरीत वह ऐतिहासिक रूप से जरूरी राजनीतिक गतिविधि और क्रांतिकारी सांस्कृतिक कर्म है। शिक्षित होने का मतलब उत्पीड़नकारी व्यवस्था में ही अपनी जगह बना लेना नहीं, बल्कि पूर्णतर मनुष्य बनना है और पूर्णतर मनुष्य तभी बना जा सकता है, जब अमानुषिक बनाने वाले यथार्थ को बदला जाए।

शिक्षा के माध्यम से 'अमानुषिक बनाने वाले यथार्थ' की पहचान करना आवश्यक है कि आखिरकार वे कौन से वर्ग हैं, जो हाशिए पर धकेल दिए गए हैं। इन वर्गों को 'अमानुषिक बनाने वाले यथार्थ' को बदलने के लिए चेतना के स्तर पर तैयार किए बिना इस दिशा में सार्थक पहलकदमी नहीं हो सकती। इन वर्गों को चेतना के स्तर पर तैयार करने में सही शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होने के कारण यह भी देखना आवश्यक है कि इनके लिए शिक्षा की बेहतर व्यवस्था क्या और कैसी हो सकती है, तथा शिक्षा के संबंध में उनकी दृष्टि को सकारात्मक कैसे बनाया जा सकता है। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि 'जब शिक्षा का अर्थ अमानुषिक यथार्थ को बदलने की प्रक्रिया नहीं रह जाता, अथवा जब शिक्षा को अपनी स्थिति को बदलने के औजार के रूप में हम समझ नहीं पाते, या शिक्षा परिवर्तन का औजार ही नहीं बन पाती, तो फिर शिक्षा और व्यक्ति के बीच 'अलगाव' का हो जाना स्वाभाविक ही है।

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो केवल साक्षर बनाने की बात नहीं करते। पढ़ाई की उम्र पार कर चुके लोगों के लिए साक्षरता एक महान उद्देश्य बन सकती है, किंतु उन्हें अक्षर-ज्ञान तक सीमित रखना बादल को ओट में रखने के समान होगा। शिक्षा परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए व्यक्ति को सक्षम बनाती है। वह अपने और परिवेश के अंतर्संबंधों को समझ सिखाती है। यह समझ प्रगति की दिशा में पहली सीढ़ी है। शिक्षा मनुष्य की क्षमता को व्यापक सामाजिक सरोकारों से जोड़ती है। यही जुड़ाव शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन या विकास का वाहक बनाता है। शैक्षिक ज्ञान से शक्ति प्राप्त होती है। परंतु यही शक्ति कभी-कभी व्यवस्था के प्रभुतासंपन्न वर्गों के लिए सत्ता पर वर्चस्व बनाने का औजार हो जाती है। इस व्यवस्था को पाउलो फ्रेरे ने 'बैंकिंग प्रणाली' कहा है। शिक्षा से उपजा अहंकार उत्पीड़ित समाज में भी दो वर्ग पैदा करता है। एक शिक्षित अपने समाज के लोगों से दूरी बनाए रखने की भरपूर चेष्टा करता है, ताकि उसकी पहचान अलग तरीके से हो। वह मर्द बनना चाहता है, जिसका मतलब है, उत्पीड़क बनना। उसके लिए वहां मनुष्यता या मर्दानगी का नमूना है। इनके लिए प्रभुत्वशाली लोगों का व्यवहार गाँडल हो जाता है। ऐसा करने पर इनका रोब प्रभुत्वशाली लोगों की तरह अपने समाज में कायम रहता है और दूसरा वर्ग इनसे प्रभावित होता है। ऐसा माना जाता है कि निरक्षरता उन्मूलन संघर्ष की प्रारंभिक अवस्था के दौरान एक नया वर्ग उभरता है जो स्वयं को 'नया मनुष्य' या स्वाभिमानी समझता है। उत्पीड़क से तादात्म्य किए रहने के कारण उनके अंदर अपने बारे में चेतना नहीं होती कि हम उससे भिन्न स्वतंत्र व्यक्ति या उत्पीड़ित वर्ग के सदस्य है। वे समाज में ऊपर उठना चाहते हैं तथा अपने लोगों को भी उठाना चाहते हैं, पर ऐसा नहीं कि इससे बदलाव आएगा या चेतना का विस्तार होगा; वे समाज में सुधार इसलिए चाहते हैं कि उन्हें नेतृत्व का अवसर मिले और उनका रोब बन जाए। शायद यही कारण है कि एक हरिजन शिक्षक अपनी मर्दानगी या रोब को कायम रखने के लिए हरिजन बच्चों से घृणा करता है। ऐसे कई उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि पंचायत या प्रखंड स्तर पर गठित उत्प्रेरक दल के सदस्यों ने उत्पीड़ित समाज पर प्रभाव डालने का प्रयास नहीं किया। उत्पीड़ितों के बारे में यह धारणा कि उन्हें कुछ देना है, आत्म-अवमूल्यन का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसी स्थिति में उत्पीड़ितों में विवेकीकरण की क्षमता नष्ट होती है तथा उनकी ओर से पहल करने का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

सत्ता पर वर्चस्व कायम रखने वाले समूचे वर्ग हाशिए पर खड़े

लोग खूब सुहाते हैं। लोग हाशिए पर खड़े हैं तो इसका अर्थ हुआ समाज का एक बड़ा तबका हाशिए पर खड़ा है। एक अमानुषिक व्यवस्था में सत्ता पर वर्चस्व बनाए रखने वाले अल्पसंख्यक लोगों के लिए यह जरूरी है कि बहुसंख्यक उत्पीड़ित लोग हाशिए पर धकेल दिए जाएं। इसी से सत्ता का सुख या सत्ता का रोब मिलता है। हम साक्षरता को व्यापक अर्थ में लें कि समाज में शैक्षिक ज्ञान, शक्ति या रोब जमाने की चीज न रह जाए।

हाशिए पर खड़े लोगों के प्रति आत्मीयता एवं संवेदनशीलता लाने के लिए सबसे पहले इन लोगों के संपूर्ण परिवेश को समझना होगा। इस उत्पीड़ित समाज में बचपन जैसा शब्द वास्तविक अर्थ में अपरिचित-सा बन जाता है। ये ऐसे फूल होते हैं, जो मखमली घासवाले लॉन में नहीं खिलते, अपितु जंगली झाड़ियों में अधखिले ही मुरझाते हैं। ये नदियों से मस्ती सीखते हैं, धरती के अंदर से जीवन की नमी ढूंढ़ लेते हैं। अनंत आकाश से उनकी संजीवनी शक्ति ओस की बूंदों की शक्ल में झरती रहती है। ये फसलें, मौसम, ऋतुएं, धूप, सर्दी, बरसात, देशी फूल, जंगली फल, घोंघे, मछलियां, मक्का, जौ, बाजरा, बादल, आकाश, हवा, लू, बाढ़ अकाल—सब कुछ को बहुत करीब से देखते हैं। चूल्हे की आग भले ही हमेशा नहीं देख पाते हों, परंतु अग्निकांड में स्वाहा हो जाने वाले खेतों, खलिहानों, वनों, घरों, गांवों के दर्द को ये अच्छी तरह जानते हैं। ये प्रेम और दुत्कार में अंतर कर सकते हैं। अच्छे और बुरे की भी पहचान इन्हें होती है। छोटी झोपड़ी और बड़े घरों का फर्क ये बखूबी जानते हैं। खेत में पड़े ढेले व सूरज की गोलाई को देखकर ये ज्यामिति का आकार बनाना सीख लेते हैं। ये औपचारिक शिक्षा से वंचित भले ही हों, लेकिन जीवन की अनौपचारिक पाठशाला में जितना कुछ ये सुन-गुन लेते हैं, उतना शायद इनकी उम्र के दूसरे बच्चों को नसीब नहीं होता होगा। इनमें से अधिकांश के बाप-दादों, मां-दादियों ने रामायण की चौपाइयां या कुरान की आयतें जरूर सुनी होती हैं, किंतु स्कूल का मुंह कभी नहीं देखा होता है।

अतएव इनके लिए उन शिक्षाशास्त्रीय संकल्पनाओं की आवश्यकता है, जिनके केंद्र में लोगों के प्रति गहरी आत्मीयता एवं संवेदनाएं हों। ऐसा शिक्षाशास्त्र ही इन्हें शिक्षा के माध्यम से अमानुषिक सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के आलोचनात्मक एवं सही विश्लेषण की समझ दे सकेगा और ये अमानवीय जीवन-स्थितियों को बदलने में सक्षम हो सकेंगे।

कैसी होगी रणनीतियां?

अभी तक साक्षरता-अभियान में लोक-भागीदारी एवं साझी समझ को प्रोत्साहित करने का जो प्रयास किया गया है तथा उससे जो नतीजे सामने आए हैं, उनसे ऐसा लगता है कि—

- समुदाय के विकास की मुख्य जिम्मेवारी सरकार की है।
- लोगों में स्थानीय स्तर पर स्थानीय संसाधनों के आधार पर पहल का अभाव है। लोग अपनी क्षमताओं को भूलकर सरकार की ओर आशा भरी निगाहों से देखते हैं।
- सामुदायिक संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सरकारी एजेंसियों द्वारा ईमानदारीपूर्वक किए गए प्रयास के अभाव में कार्यक्रम की गति में अवरोध देखा जा रहा है तथा साथ ही साथ कार्यक्रम का सरकारीकरण तेजी से हुआ है।
- अन्य चलाए जा रहे कार्यक्रमों में पारदर्शिता नहीं रहने के कारण लोगों ने साक्षरता-अभियान को भी शक की निगाह से देखना शुरू किया है। आत्मविश्वास की कमी तथा लोगों में उदासीनता साक्षरता-अभियान को अभियान की तरह नहीं रखा।
- अन्य शिक्षा कार्यक्रमों; जैसे-जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, अनौपचारिक शिक्षा, जनशिक्षा कार्यक्रम आदि के साथ तालमेल का अभाव तथा ग्रामीण स्तर पर एक प्लेटफार्म का नहीं होना लोगों में भ्रम पैदा करने के लिए पर्याप्त कारण बना हुआ है।
- सरकार एवं समुदाय के बीच दाता-पाता के संबंधों का सशक्त होना तथा लोक सशक्तीकरण की प्रक्रिया का किसी स्तर पर 'डायल्यूट' हो जाना।

अगर जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत चलाए जा रहे सूक्ष्म स्तरीय नियोजन (माइक्रो प्लानिंग) की कार्यशैली का अध्ययन किया जाए तथा साक्षरता-अभियान के साथ तालमेल बनाने की कोशिश की जाए तो कोई शक नहीं कि आने वाले दिनों में बेहतर नतीजे सामने आएंगे। सूक्ष्मस्तरीय नियोजन लोगों को खुद सोचने, विश्लेषण करने, निर्णय लेने, योजना बनाने, मूल्यांकन करने, क्रियान्वित करने तथा उसके प्रबंधन एवं अनुश्रवण का अवसर प्रदान

करता है। परिणामस्वरूप, लोगों में आत्मविश्वास के साथ अपना विकास खुद करने की क्षमता विकसित होती है। हमारा तात्पर्य समुदाय की सहभागिता एवं नेतृत्व की एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिससे न सिर्फ निर्धारित लक्ष्यों की संप्राप्ति होगी, बल्कि पूरी प्रक्रिया में अभियान का सामुदायिक संस्थागत चरित्र भी उभरकर सामने आएगा।

- सूक्ष्मस्तरीय नियोजन की असली शक्ति यह है कि इस प्रक्रिया में शामिल लोग कार्य का परिणाम जान सकते हैं।
- इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहां एक ओर समुदाय सरकार द्वारा प्रदत्त शैक्षिक सुविधाओं में सुधार के लिए योजना बनाता है, वहां अमानुषीकरण बनाने वाले यथार्थ को तोड़ने का प्रयास करता है।

भारत में साक्षरता-अभियान को संदर्भयुक्त एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाने का भरसक प्रयास किया गया है। फिर भी, उसका स्वरूप ऐसा नहीं लगता, जिसे देखकर कहा जा सके कि सूक्ष्मस्तरीय नियोजन की प्रक्रियाओं का पालन किया जा रहा है।

नियोजन के लिए निर्धारित प्रत्येक गांव की रणनीति तय करते समय हमें सबसे पहले निम्न तीन बातों पर मुख्य रूप से ध्यान देना होगा—

- सूक्ष्मस्तरीय नियोजन का ग्राम-शिक्षा-समिति के साथ अंतर्संबंध।
- सामूहिक सहभागिता से 'साझी समझ' की प्रक्रिया से ग्राम शिक्षा समिति का गठन-पुनर्गठन।
- सूक्ष्मस्तरीय नियोजन में वित्त की भूमिका।

सूक्ष्मस्तरीय नियोजन का मूल उद्देश्य लोगों को साक्षरता कार्यक्रम के पक्ष में जीत लेना नहीं, बल्कि उन लोगों के साथ-साथ उनकी खोई मनुष्यता की वापसी के लिए लड़ना है। लोगों को अपने पक्ष में जीत लेने का मुहावरा साक्षरता अभियान का नहीं, बल्कि उत्पीड़कों की शब्दावली का हिस्सा है। अभियान से जुड़े लोगों को इस भुलावे से निकलना होगा कि लोगों के मन को जीतने का अर्थ उद्देश्य-संप्राप्ति का एक चरण समाप्त हुआ।

सूक्ष्मस्तरीय नियोजन से प्राप्त अनुभवों का लाभ लेने के लिए यह आवश्यक है कि जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एवं इसके सदृश्य कार्यक्रमों; जैसे—मीड आदि की भूमिकाओं को गंभीरता से लिया जाए ताकि ऐसे कार्यक्रमों से बेहतर तालमेल बनाया जाए। निरक्षरता उन्मूलन जैसे घोषित युद्ध के लिए आवश्यकता है समर्पित ब्रिगेडिस्टा (शिक्षा सेना) की, जिसका हथियार होगा—लालटेन और किताब। यह युद्ध प्रतिशत एवं आंकड़ों के लिए नहीं लड़ा जाएगा। आज आवश्यकता है—फिदेल कास्त्रो जैसे सबल राजनीति इच्छाशक्ति और मजबूत इरादे वाले व्यक्ति की, जो भारत में राष्ट्रीय साक्षरता संग्रहालय के सपने को साकार कर सके। इस घोषित युद्ध को हर समर्पित नौजवान यह मानकर चले कि 'हर घर स्कूल है, हर भारतीय शिक्षक है।' जो जानते हैं पढ़ाएं, जो नहीं जानते, पढ़ें।' पॉलो फ्रेरे के शब्द यहां उचित जान पड़ते हैं कि "स्वतंत्रता जीतकर हासिल की जाती है, उपहार में नहीं मिलती।' उसे पाने का प्रयास लगातार और जिम्मेवारी के साथ करना पड़ता है। स्वतंत्रता कोई ऐसा आदर्श नहीं है जो मनुष्य के बाहर स्थित हो। वह कोई ऐसा भाव भी नहीं है, जो भ्रमित कर जाए। वह तो मानवीय पूर्णता के प्रयास की एक अपरिहार्य शर्त है।"

क्यूबा के परिवार के आखिरी सदस्य के आखिरी इम्तहान पास कर लेने के बाद और फिदेल कास्त्रो के पास हस्तलिखित पत्र भेज देने के बाद घर के दरवाजे पर एक झंडा लहराने लगता था: टेरिटोरियो लिबेर अनल्फा बेटिस्मो (अशिक्षा मुक्त क्षेत्र)। ऐसे महाभियान में नौजवानों ने खुलकर हिस्सा लिया। इस अभियान के औपचारिक समापन पर फिदेल ने कहा कि "अब आप लोग स्कूल लौट जाएं। जब पहुंच जाएं तो मुझे तार भेजकर बताएं कि क्या आप विश्वविद्यालय में पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति चाहते हैं। वहां आपको ऐसे हुनर सीखने हैं, जिनकी जरूरत हमारी जनता को है।"

लोक-भागीदारी का बेजोड़ नमूना इससे अधिक और क्या हो सकता है कि ब्रिगेडिस्टा के प्रत्येक नौजवान को आवंटित परिवार के साथ जीवन गुजर-बसर तब तक करना था, जब तक उस परिवार का आखिरी सदस्य साक्षर न हो जाए। संभवतः सामाजिक यथार्थ को जानने का यह बेजोड़ अवसर था। ब्रिगेडिस्टा का नौजवान प्रैक्सिस (आचरण) के कसौटी पर खरा उतरता था। ऐसा नहीं था कि नेता उसके चिंतक हो जाएं तथा उत्पीड़ित लोग महज कार्यकर्ता। वस्तुतः प्रैक्सिस के स्तर पर शिक्षक एवं छात्र के बीच कोई अंतर नहीं था।

महान् क्रांतिकारी चे ग्वेवारा ने कहा था—"नहीं बदलता समाज,

बिना देखे एक बेहतर सपना।" मुक्तिकामी योद्धा नहीं लड़ सकते दीर्घकालीन कठोर युद्ध आंखों में बिना आंजे बेहतर कल के सपने। सपनों के लिए तो खप जाता है एक समूचा इतिहास, दफन हो जाती हैं अनेक पीढ़ियां। अनगिनत पतझरों तक, माटी में मिल खाद बनते रहे जाते हैं पत्ते। तब भी, शायद सच नहीं हो पाते सपने। लेकिन इतना तो सच है, बिना गढ़े कोई सपना—नहीं सिरजा जा सकता कोई सच कोई कल, कोई भोर, जाड़े की गुनगुनी धूप और तपते मरूस्थल में ठंडा मरूत!...

साक्षरता भी एक सपने की तरह है। गिरि-कंदराओं, अरण्यों में वास करने वाली लुप्त होती जनजातियों से लेकर दलित कही-सुनी जाने वाली एवं उच्छिष्ट पर जिंदा रहनेवाली—हाशिए पर पड़ी उत्पीड़ित जमात के लोगों को शिक्षा की 'हदों' के अंदर ला देना, सचमुच सपने की तरह ही है। इन लोगों के संदर्भ में तो यह सपना सच नहीं हो पाया बीसवीं सदी के अंत तक।

होते रहे हैं अनेक तरह के यत्न-प्रयत्न। बनती रही हैं शैक्षिक योजनाएं। आवंटित होती रही है निधि। बांधे गए हैं मनसूबे। चले हैं कितने ही अभियान। पर आधी से अधिक आबादी—बीसवीं सदी के अंतिम दिनों तक भी—रह गई है बाहर ही बाहर स्कूल शिक्षा की परिधि से।

संपन्न वर्गों ने तो शिक्षा को मान लिया है सुगम राह, सत्ता-शिखरों पर आसीन होते रहने की। जगमगाते स्कूलों-कालेजों के रास्ते—वे तय करते चले जा रहे हैं सिविल सोसायटी एवं ज्ञान पर आधारित समाज तक की मंजिलें। कम्प्यूटर का बटन दबाते ही सिर नवाए 'हाय' से खड़ा हो जाता है उनके समक्ष तिलस्मी जिन्न, क्या हुक्म है मेरे आका!...और 'खुल जा सिमसिम' के अंदाज में वह जिन्न बिछा देता है उनके महंगे गलीचों पर किसिम-किसिम की नियामतें।

शिक्षा है उनके लिए जेब की चीज, गुलामों पर शासन करने का चाबुक और निस्सीम गगन में कुलांचे भरने जाने के पंख।

पर जो पड़े हैं सामाजिक हाशिए पर, जो उत्पीड़ित हैं 'स्पार्टकस' की तरह सदियों से अभी तक, जो झेल रहे हैं देश संसाधनों के असमान वितरण एवं कुछ ही हाथों में उत्पादन के साधनों के सिमटते जाने का, साक्षरता उन्हीं के लिए है सपने की तरह स्वप्नवत! मेरे भाई स्पार्टकस, अपनी संतति को 'ज्ञान' दो, 'रोशनी' दो। वे गढ़ लेंगे अपने लिए वह बेहतर कल, जहां नहीं बरसाएगा अपनी पीठ पर चाबुक, कोई भी तानाशाह...। वे जानते हैं, यदि देखने लगे स्पार्टकस सपने, तो फिर बासी सपने का नहीं मिलेगा खरीददार 'इस माया के बजरिया में'। ज्ञान की क्रांति का सपना जब देखा जाने लगेगा हर झोपड़े में, जब उमड़ेगा वह सपना हर अभिशप्त बचपन की आंखों में, जब काजल की तरह आंजेंगी आंखों में इसे स्त्रियां, जब उभरेगा चाबुक से लहूलुहान स्पार्टकस की पथराई आंखों में लाल सूरज की तरह यह सपना, तो भला कितनी देर लगेगी सच होने में इस सपने को?...पीढ़ियों का अशिक्षा के गहन बियाबान में खो जाने का गहरा दंश शायद तभी मिटेगा, जब देश की आंखों में झलमल झलकेगा शिक्षा से बेहतर समाज बनाने का सपना। समूचे देश की आंखों में दिपदिप करते सपने में ही, सच के मूर्त हो सकने की असली ताकत छिपी हुई है। इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज पर टूटेगी उत्पीड़ितों की खामोशी की संस्कृति, बजेगा इस ज्ञान की क्रांति का बिगुल, गढ़े जाएंगे इतिहास के नये क्रांति के शब्दों से।